

## सिनेमा का साहित्य कैसा हो ?

सिनेमा सभी कलाओं का संगम है। इनमें गायन-वादन, नृत्य, दृश्य-पात्र संवाद और पटकथा लेखन इत्यादि शामिल हैं। साहित्य से सिनेमा का सूत्रपात हुआ है। साहित्य और सिनेमा दोनों का उद्देश्य समाज को आईना दिखाते हुए समाधान प्रस्तुत करना है। दरअसल “साहित्य को स्याही और सिनेमा को प्रकाश समाज से प्राप्त होता है। “उन्हीं स्याही को साहित्य निखारता है जबकि उन्हीं प्रकाश को सिनेमा सतरंगी बनाता है। इसके बाद जो दिखता है वही फिल्म है।” पुस्तक और फिल्म मनुष्य को मांजने का कार्य करती है। जो साहित्य व्यक्ति को जितना ज़्यादा तराशे वह उतना सफल माना जाता है। इसलिए सिनेमा में साहित्य की प्रासंगिकता बरकरार रही है। बेहतरीन कहानी पढ़ी, सुनी और देखी जाती है। और उन कहानी को सराहना भी मिलती है। अच्छी कहानियों, रुचिपूर्ण संवादों और बेहतरीन लिरिक्स के द्वारा शानदार फिल्में बनती हैं। सिनेमा का साहित्य बाजार तय न करे बल्कि आम-जनमानस से सिनेमा का साहित्य तय हो! समाज में जो कुछ भी मौजूद हैं उन्हीं को सलीके के साथ रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करना ही साहित्य है। “साहित्य में सभी के हितों को साधा जाता है, सिनेमा में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई वर्ग अथवा समुदाय आहत न हो।” दरअसल डिजिटल वर्ल्ड में सिनेमा के साहित्य पर चिंतन-मनन-मंथन और प्रबंधन करना समय की मांग बन गई है।

साहित्य और सिनेमा का सूत्रपात केवल मनोरंजन के लिए नहीं हुआ है। समाज की अच्छी-बुरी घटनाओं का बहीखाता होता है साहित्य! साहित्यकार को इतिहासकार से ज़्यादा छूट है। एक अच्छा साहित्यकार दूरदर्शिता, कल्पनाशीलता और रचनात्मकता के सहारे ऐसी कहानी गढ़ सकता है जो यथार्थ भी लगे, रुचिकर भी हो और नई राह भी प्रस्तुत करे! आजकल दर्शकों को यही पसंद है। दरअसल आजका दर्शक काफी जागरूक हो गया है। उनकी पहुँच वर्ल्ड सिनेमा तक हो गई है। अब जिस फिल्म की कहानी सर्वश्रेष्ठ होती है वही देखी जाती है। “सिनेमा को यदि कमाई पसंद है तो दर्शक को कहानी पसंद है। कहानी में दम है तो फिल्म सुपरहिट होती है।” इसका मतलब यह कतई नहीं है कि अच्छी कहानी रचने के क्रम में सामाजिक ताना-बना को बिगाड़ दें। वह कहानी अच्छी हो ही नहीं सकती जो झूठ पर टिकी हुई हो।

यदि भारतीय सिनेमा के अतीत पर गौर करें तो पाएंगे कि हमारे यहाँ का सिनेमा साहित्य के साथ चलने की कोशिश कथा-सम्राट ‘मुंशी प्रेमचंद’ के दौर से ही शुरू कर दिया था। वर्ष 1934 में प्रेमचंद के रचनाओं पर नवजीवन और सेवासदन जैसी फिल्में बनीं। वर्ष 1941 में त्रियाचरित्र और रंगभूमि पर फिल्में आईं। प्रेमचंद के शतरंज की खिलाड़ी और सद्गति पर ‘सत्यजीत रे’ ने शानदार फिल्म बनाई थी। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास चित्रलेखा, शरतचंद्र के उपन्यास देवदास, मन्नू भंडारी की कहानी यही सच है, फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी मारे गए गुलफाम पर बेहतरीन फिल्में बनाई गईं। यानी भारतीय सिनेमा में मूल साहित्य के योगदान का इतिहास नया नहीं है। हाल के वर्षों में भी विभिन्न लेखकों के उपन्यास अथवा कहानी पर कई सफल फिल्में बन चुकी हैं। चेतन भगत के उपन्यास ‘द 3 मिस्टेक्स ऑफ माई लाइफ’ पर काई पो छे, ‘फाइव पॉइंट समवन’ पर श्री इडिट्स, ‘वन नाइट एट द कॉल सेंटर’ पर हैलो जैसी फिल्में बनी हैं। आर. के. नारायण के उपन्यास द गाइड, अमृता प्रीतम के उपन्यास पिंजर, शरतचंद्र के उपन्यास परिणीता, काशीनाथ सिंह के उपन्यास काशी का अस्सी पर भी शानदार फिल्में आ चुकी हैं। रस्किन बॉन्ड की कहानी सुसानाज सेवन हस्बैंड्स, झुम्पा लाहिड़ी के उपन्यास नेमसेक, शेक्सपियर के नाटक ओथेलो और मेकबेथ पर भी मशहूर फिल्में बनाई गई हैं। और इन तमाम फिल्मों को दर्शकों एवं आलोचकों का साथ मिला है।

दरअसल दर्शकों की तालियाँ केवल अच्छा निर्देशन और अभिनय पर नहीं बजती है, यदि कहानी दमदार हो तो तालियाँ बजनी तय है। अब दर्शकों को भरमाया नहीं जा सकता है। इसलिए भारतीय सिनेमा हाल के वर्षों में चुनौतियों से गुजरा है। सिनेमा में मानक साहित्य अथवा रुचिकर कथानक की माँग दर्शक करने लगे हैं। इसलिए हम देखते हैं पिछले कुछ वर्षों में कहानी प्रधान फिल्में खूब चली हैं जबकि बड़े-बड़े स्टार की फिल्में असफल हो गई हैं। “यदि केवल ताम-झाम और बड़े स्टार के बल पर फिल्में सफल नहीं हो रही हैं तो यह भारतीय सिनेमा के लिए चुनौती नहीं बल्कि शुभ संकेत है।” क्योंकि शानदार कंटेंट के बल पर ही भारतीय सिनेमा टिकाऊ ढंग से आगे बढ़ेगा और अंतर्राष्ट्रीय पहचान हासिल करेगा।

सिनेमा की गुणवत्ता और सफलता पटकथा में उपयोग किए जा रहे संवाद से भी तय होती है। मेरे पास माँ है, पुष्पा मुझे आंसुओं से नफ़रत है, कितने आदमी थे, मोगैम्बो खुश हुआ, बड़े-बड़े देशों में ऐसी छोटी-छोटी बातें होती रहती हैं सेनोरिता, हारकर जीतने वाले को बाज़ीगर कहते हैं, म्हारी छोरिया छोरो से कम है काय, साला ये दुख काहे खतम नहीं होता है बे, जिनके घर शीशे के होते हैं वह दूसरों के घर पत्थर नहीं फेंका करते, बाबूमोशाय ज़िन्दगी बड़ी होनी चाहिए-लंबी नहीं; ये सब केवल वाक्य नहीं हैं बल्कि साहित्य-सिनेमा के रास्ते आम-जनमानस में घुलमिल गए समानुभूति हैं। सिनेमा का साहित्य ऐसा ही होना चाहिए। “जिनके वाक्य भाव प्रधान हो, जिनसे व्यक्ति मंत्रमुग्ध होकर सच जान सके- वही सिनेमा का असली साहित्य है।”

भारतीय सिनेमा के साहित्य में कई तत्व शामिल होते हैं। कहानी के साथ-साथ गीत का भी उचित मिश्रण होता है। लिरिक्स ऐसे हो कि उनके साथ असल ज़िन्दगी की लय तारतम्यता स्थापित कर ले; कुछ-कुछ एसएस राजामौली की बेहतरीन फिल्म ‘RRR’ के ‘नाटू नाटू’ गाना जैसा। 1990 के दशक के हिंदी सिनेमा के गाने और उनसे पहले के गाने आज भी प्रासंगिक इसलिए हैं क्योंकि उनमें लिरिक्स अच्छे लिखे गए हैं। “जब-जब सिनेमा ने लेखन के योगदान को ख़ारिज किया है तब-तब सिनेमा बुरे दौर से गुजरा है।” क्षेत्रीय सिनेमा और दक्षिण भारत के सिनेमा में कहानी के महत्व को बहुत कम नज़रअंदाज़ किया गया है शायद इसलिए हिंदी पट्टी के दर्शक भी उन्हें देखना पसंद करते हैं।

चूँकि अब अधिकतर लोगों के पास स्मार्टफोन आ गया है। ओटीटी प्लेटफॉर्म पर कंटेंट की बाढ़ आ गई है। इसलिए सिनेमा के साहित्य/कहानी में सजगता की ज़रूरत है। क्योंकि सिनेमा से नई पीढ़ी के दिलोदिमाग पर गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए सिनेमा का साहित्य युवाओं को दिग्भ्रमित करने वाला नहीं होना चाहिए। “यदि युवाओं में जागरूकता, प्रेरणा, शिक्षा और आदर्श का माध्यम सिनेमा बने तो समाज को सही दिशा मिल सकती है।” उदाहरण के लिए- श्री इंडियट्स, दंगल, तारे जमीन पर, इंग्लिश-विंग्लिश, चक दे इंडिया, इकबाल, क्वीन, भाग मिल्खा भाग, रंग दे बंसती, मैरी कॉम और स्वदेश इत्यादि। दरअसल कला के जितने भी माध्यम हैं सबका उद्देश्य मानव को जागरूक करते हुए समाज का उत्थान करना है। साहित्य और सिनेमा को इसी उद्देश्य हेतु आपस में एक-दूसरे का हाथ थामकर आगे बढ़ना चाहिए।

भारत में कहानियों की भरमार है। कहने के लिए हमारे पास बहुत कुछ है। लेकिन कहने में मौलिकता हो। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक इत्यादि दृष्टिकोण से भारत में कथानक की कोई कमी नहीं है। दर्शक उन्हीं कथानक से ज़्यादा आकर्षित होते हैं जो उनके बीच के लगते हैं। कहानी जब दर्शक को स्पर्श करती हुई महसूस होती है तब सिनेमा का भला होता है और समाज का भी! “साहित्य हो या सिनेमा दोनों तब

बेगारी करने लगते हैं जब उनमें ठोस और प्रासंगिक विषयवस्तु का अभाव होता है।” सिनेमा का साहित्य के रचनाक्रम में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।

यदि सिनेमा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर बने तो इतिहास से छेड़छाड़ न हो। नया इतिहास लिखने अथवा गढ़ने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। राजनीतिक पृष्ठभूमि पर बनी फिल्म किसी विशेष राजनीतिक दल को लाभ या हानि पहुँचाती हुई प्रतीत नहीं होनी चाहिए। लिखी हुई पुस्तक (उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, जीवनी) पर फिल्म बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि रचनाकार के दृष्टिकोण और रचना के मर्म के साथ अन्याय न हो! दरअसल प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भवानी द्वारा ‘मिल मजदूर’ नामक फिल्म बनाई गई थी। जब इस फिल्म को प्रेमचंद देखे तो उनका कहना था- “मजदूर में इतना ज़रा सा मैं आया हूँ कि नहीं के बराबर। फिल्म में डायरेक्टर ही सबकुछ है।” संवेदनशील मुद्दे पर फिल्म बनाते समय पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। तमाम शोध के बाद ही स्क्रिप्ट को फाइनल करना चाहिए। फिल्मों के रीमेक से बचना चाहिए। हमारे यहाँ विषयवस्तु और कहानियों की कोई कमी नहीं है। अनदेखी-अनसुनी मौलिक कहानी को साहित्य और सिनेमा में जगह देकर ही हम वर्ल्ड सिनेमा से मुकाबला कर सकते हैं।

भारत विविधताओं से संपन्न देश है। कौन किस बात पर खुश हो जाए और किस बात पर दुखी, यह हम जितना जल्दी समझ जाते हैं हमारे लिए उतना ही अच्छा होता है। इसकी बारीक समझ साहित्य और सिनेमा में भी दिखनी चाहिए। “पुस्तकों में लिखी बातों की पहुँच यदि लाखों पाठकों तक होती है तो फिल्मों में दिखाए गए दृश्यों, बोले गए संवादों और गाए गए गीतों की पहुँच करोड़ों दर्शक तक होती है। अतः साहित्य से ज़्यादा सिनेमा में सजगता के साथ संवेदनशील होने की आवश्यकता महसूस होती है।” इसलिए सिनेमा के साहित्य का सजग और प्रामाणिक होना ज़रूरी है।

**वसीम बरेलवी लिखते हैं कि -**

“कौन-सी बात कहाँ, कैसे कही जाती है,

ये सलीका हो, तो हर बात सुनी जाती है।”

वसीम बरेलवी के विचार पटकथा के संदर्भ में भी सौ फीसदी सच साबित होता है। बीते वर्षों में भारतीय सिनेमा ने उन मुद्दों पर भी ध्यान खींचा है जिनपर हमलोग सार्वजनिक तौर पर बात करने से बचते थे। उदाहरण के लिए - समलैंगिकों के साथ हो रहे बर्ताव को बयाँ करती फिल्म अलीगढ़, घरेलू हिंसा पर बनी फिल्म थप्पड़, स्पर्म डोनेशन और इन्फर्लिटी पर बनी फिल्म विक्की डोनेर, पीरियड्स से संबंधित फिल्म पैडमैन आदि। इस सूची में बाला, गुड न्यूज़, मजा मा, हिंदी मीडियम, मिमि, बधाई हो, कागज, हेलमेट, शुभ मंगल ज़्यादा सावधान, टॉयलेट एक प्रेम कथा और न्यूटन जैसी फिल्मों भी शामिल हैं। अब दर्शकों को किसी विषयवस्तु से कोई परहेज नहीं है, शर्त बस इतनी है कि कहानी को पर्दा पर प्रस्तुत करने का सलीका ठीक हो!

दरअसल सिनेमा केवल रोजगार का ज़रिया नहीं है बल्कि यह कला का माध्यम भी है। “यदि एक लेखक लेखन के दौरान दर्शकों को बांधे रखने वाली कहानी बुने, निर्देशक और उनकी टीम उस कहानी को सही से फिल्माये तो करोड़ों दर्शक ऐसी फिल्मों के मुरीद होते रहेंगे।” यही वजह है कि अब ऐसी फिल्में ज़्यादा पसंद की जा रही हैं जिनमें कहानी स्टार होती है। भारतीय सिनेमा यदि कहानी की तरफ बढ़ रहा है तो ओम शांति ओम का संवाद उम्मीद बढ़ाता हुआ प्रतीत होता है- पिक्चर अभी बाकी है मेरे दोस्त!